प्रेरणा

जय जिनेन्द्र,

पिछले कुछ माह से मैंने लेखनी चलाने की धृष्टता की है, फलस्वरूप मध्यान्तर जैसी रचना के बाद कुछ छन्दबद्ध और छन्दमुक्त कविताओं की भी रचना हुई है। छन्दबुद्ध कविताओं को **'प्रेरणा'** और छन्दमुक्त कविताओं को **'जो कुछ कहा-सच कहा'** नाम से प्रकाशित किया जा रहा है।
यह मुझे स्वीकार करते हुये कतई संकोच नहीं है कि मैं साहित्यिक दृष्टि से कवि/लेखक नहीं हूँ पर भावों को व्यक्त करने हेतु मन नहीं माना और लेखनी चल पड़ी। अतः आलोचक काव्यशास्त्र के आधार पर रचनाओं को तौलेंगे तो शायद यह रचनायें कमतर हों पर भावशास्त्र के आधार पर संभव है आपके मन को छुयें। रचनाओं के विषय में विविधता और नूतनता संभवतः आपको लगे। मैंने अपनी ओर से सहज प्रयास में जो कुछ भी बना लिखा है।
आप साहित्य और दर्शन के ज्ञाता हैं आपसे अपेक्षा है कि आप इनको पढ़कर आवश्यक मार्गदर्शन करें। निश्चित ही आपके पास समय की कमी और कार्य की अधिकता होगी परन्तु समाज में त्रुटिपूर्ण रचना जाने से अच्छा है, अपना समय देकर उसे त्रुटिरहित करने में अपना योगदान करना। निष्पक्ष रूप से कहें कि यह रचनायें प्रकाश्य हैं या नहीं या इनमें क्या सुधार किया जा सकता है या सच में आपको अपने साथी रचनाकारों की अपेक्षा इनमें विषय व शैली की कुछ नूतनता लगी है।
जो भी हो अपनी राय अवश्य दें। जल्दी नहीं है पर अधिक देरी नहीं करेंगे ऐसा विश्वास है।

राजकुमार शास्त्री
९४१४१०३४९२ ७/५/१५

अनुक्रम–

१.दुर्लभ नरभव पाकर चेतन किया न तूने २. बारहभावना ३. निज चेतन चिद्रूप ४. राजमहल हो या फुटपाथ ५. मनवाला है मानव ६. चाह नहीं है सुख–सुविधा में ७. अन्तर्विरोध कविता बनाता हूँ ८. दूध रहे पानी के संग ०९ अब हम आतम को पहचाना १०. पापोदय जब आता है.. ११. मर्दन किया मोह का १२. महावीर १३. एक आत्मा ध्याया १४. गुरुदेव जयन्ती आज १५. उमराला में जन्मे थे १६. मेरे प्यारे गुरु कहान १७. गुरुदेव कह गये सभी से १८ ध्रुव से ही नाता जोड़ो ७३. गुरुदेव श्रीकहानजी स्वामी २३. अच्छे दिन आने वाले हैं २७. महाभाग्य से जिनदर्शन २८. आत्मार्थी परिवार कैसा हो? ३०. एक मनुज जब उदर पूर्ति हित ३१. अज्ञ कृषक ज्यों.. ३२. ये दुनिया तो दीवानी है ३३. आत्मार्थी की अन्तर्भावना ३४. अभिप्राय का खेल ३५. मोहनींद को अब टालो ३६. मतलबी संसार ३७. मानवता का उपयोग ३९. जन्म दिन किसका रे भाई ४०. परम पुनीत पर्व यह पावन ४२. सोचता हूँ यह क्यों हुआ? ४३. मुक्तक ४४. क्षमावाणी ४५. सन्मित्र ४६. मंगल प्रभात ४७. सवैया २ ४८. नववर्ष ४९. समर्पण ५०. सत्संगति ५१. उर्दू छंद ५२. मुक्तक ५३. घर–घर स्वाध्याय ५४. यह दुनिया –वह दुनिया ५७. प्रेरणा ५८. स्नातकों की भावना चुनाव हो गया ६१. ६३. ज्यों पतिगृह में आकर ६४. असफलता ६७. मैं अरागी हूँ सदा ६८. मुक्तक महावीर/गुरुदेव ६९. जिनवाणी ही शरण है ७४. सवैया गुरुदेव ४ ७५. कहते हैं कानजी स्वामी ७९. मानता और जानता हूँ ८०.पुण्य–पाप का फल८ ८२. भजन

१. तत्त्वविचार

दुर्लभ नर भव पाकर चेतन किया न तूने तत्त्व विचार।
तू है कौन ? कहाँ से आया ? कैसे चलता यह व्यापार ?
गोरा, काला शरीर मिला क्यों? क्यों पाया ऐसा परिवार।
कोई सुन्दर, कोई असुन्दर, दुःख–सुख का ना पारावार।।

सभी चाहते नित प्रति सुख हैं, पर सुख को वे नहीं पाते।
अजर–अमर मैं रहूँ सदा ही, पर इक क्षण में मर जाते।
मोही होकर जिनको पोषे, वे देते हैं साथ नहीं।
करे परिश्रम रात–दिना तू, पर लगता कुछ हाथ नहीं।।

यश चाहे पर अपयश मिलता, स्वास्थ्य चहे पर होवे रोग।
माल भरा है गोदामों में,कर नहीं पावे उनका भोग।।
तेरे करने से कुछ हो तो, करले तू इक काला बाल।
बाल भी काला कर ना पाये, अब तो बदलो अपनी चाल।।

होते हुए काम को जानो, कुछ भी तेरे नहीं आधीन।
तेरे करने से कुछ नहीं होता, होता है सब कर्माधीन।।
तू है चेतन, तन है अचेतन, है स्वतंत्र सारा परिवार।
हो स्वतंत्र परिणमन सभी का, करलो चेतन तत्त्व विचार।।
२०/०९/१४

२. बारह भावना

तन-धन भोग अनित्य हैं, इक आतम ही नित्य।
निज आतम अवलम्ब से, सुख पाओगे नित्य।।१।।

मंत्र-तंत्र न शरण है, शरण है आतम राम।
निज आतम को भूलकर, भ्रमता जगत तमाम।।२।।

राग-द्वेष-अज्ञान ही, हैं अपना संसार।
यह ही दु:ख के हेतु हैं, कर इनका संहार।।३।।

सुख दु:ख भोगे एक ही, एक ही हंसवे रोय।
जन्मे मरे सु एकला, साथी कोई न होय।।४।।

मात-पिता भाई-बहन, कोई न अपना होय।
पर को अपना मानकर, मूरख व्यर्थ ही रोय।।५।।

यह तन मल की खान है, और अशुचि है राग।
राग आग को त्याग कर, निज से कर अनुराग।।६।।

कर्मों का हो आगमन, जब हो राग अरु द्वेष।
इनको होवे नाश जब, मिटता भव का कलेश।।७।।

निज घर में ही नित रहो, कर्मागम रुक जाये।

निजानंद जब हो प्रकट, तब संवर कहलाय।।८।।

निजानंद की प्रचुरता, शुद्धि बढ़ती जाय।
संचित पूरब जे कर्म,क्रमशः झड़ते जाय।।९।।

निज चेतन चिल्लोक है, बाहर तीन हैं लोक।
अमिट अनादि में सदा, फिर काहे का शोक।।१०।।

ज्ञायक हूँ यह जानना, सच में दुर्लभ नाहिं।
पर का ज्ञाता मानकर, भटक रहा जग मांहिं।।११।।

वस्तु स्वभाव ही धर्म है, जो समझे वह पाय।
ज्ञानानंद में लीन हो, निश्चित शिवपुर जाय।।१२।।

ये ही बारह भावना भाओ दिन अरु रात।
करो 'समर्पण' अहं का मुक्ति मिलेगी भ्रात।।१३।।

२७/१०/१४

जानना है जीव को, जानता ना जीव को,
जाने बिना जीव तेरा कैसे उद्धार हो।
जाने नहीं जीव जो, कौन कहे उसे जीव?
जीव जाने बिना नहीं, तेरा बेड़ा पार हो।
जड़ में जो अटका है, भव में वो भटका है,
जानो जीव, मानो जीव, तब ही सुधार हो।
मैं भी जीव, तू भी जीव, सिद्ध भगवन्त जीव,
जिनने बताया जीव, उन्हें वंदना हमार हो।।

३.निज चेतन चिद्रूप को भूला...

निज चेतन चिद्रूप को भूला, चतुर्गति में भटक रहा।
सुख का है भंडार आत्मा, पर अनंत दुःख ही है सहा।।१।।

अनादिकाल से तिर्यंचगति में दुःख ही दुःख सहता आवे।
लाखों वर्षों तक बतलावें, तो भी अंत नहीं आवे।।२।।
कोई काटे, कोई फाड़े, कोई जलावे, कोई रांधे।
भूख-प्यास मेरी न देखे, कहीं रस्सी से कोई बांधे।।३।।
सकुड़ाई में बांध-बांध कर, छेद-भेद कर तड़पावे।
हाय-हाय में चिल्लाऊँ, पर कोई न मुझको छुड़वावे।।४।।

ऐसे अति संक्लेश भाव से, नरक गति में गिर जाऊँ।
गिरते ही अति कष्ट होय, मैं कैसे प्रभुवर बतलाऊँ।।५।।
जहाँ देखते ही हथियारों से, सबका स्वागत होवे।
मारो-काटो की ध्वनि गूँजे, जो देखो वो ही रोवे।।६।।
रोना-धोना कोई न सुनता, सब मिलकर के तड़पावे।
बच पाऊँ कैसे कष्टों से, कोई न मुझको समझावे।।७।।

कोई पुण्य संयोग हुआ था, जब मैंने नरतन पाया।
विषय भोग में रच-पच मैंने, हीरा जनम गंवाया।।८।।
फिर नारक-तिर्यंच हुआ और रो-रो कर के पछताया।
जन्म-मरण के कष्ट सहन कर दुःख ही दुःख मैंने पाया।।९।।

कभी योग शुभ हुआ प्रभो! तो स्वर्गादिक में जा आया।
आत्मज्ञान बिन प्रभो! वहाँ भी, मैंने रंच न सुख पाया।।१०।।
विषयों की अग्नि में जलकर, सुख सुविधा में भरमाया।
पर का वैभव देख-देख कर, मेरे मुँह पानी आया।।

आज महा संयोग मिला है, जो नरतन जिनश्रुत पाया।
वीतराग के पथ पर चलकर, वीतराग होने आया।।
यदि यह अवसर चूका तो मैं, भव-भव में पछताऊँगा।
चतुर्गति मे भटकूंगा और दाव ना ऐसा पाऊँगा।।

है मेरा पुरुषार्थ प्रभो! अब दर्शन मोह का नाश करूँ।
संयम धर कर करूँ साधना, केवलज्ञान प्रकाश करूँ।।
है संकल्प प्रभो! अब मेरा, पास आपके आऊँगा।
करूँ 'समर्पण' निज को निज में, लौट ना भव में आऊँगा।।

१.११.१४ ९.५६ प्रातः।

मानवता का उपयोग.....

निज तन अरु परिजन को पोषें, सारे ही जग के प्राणी।
तन-धन परिजन छोड़ सभी को, धर्म साधते वह ज्ञानी।।
निज आतम के अर्थी हों जो, सच्चे स्वार्थी कहलाते।
तन-धन को जो स्वार्थ मानते, निंदनीय वे जन होते।।
पुण्योदय से प्राप्त साधनों का, परहित में करो प्रयोग।
निज स्वारथ तो पशु भी साधें, मानवता का क्या उपयोग?

४. एक विचार

राजमहल हो या फुटपाथ, रोज ही लाख जनमते हैं।
भूखे हों या पेट भरा हो, रोज ही लाखों मरते हैं।।
जीने अरु मरने के बीच में, लोग न क्या-क्या करते हैं।
पढ़ने -लिखने और कमाने को ही रात-दिन फिरते हैं।।

कमा-कमा कर, शादी करना, अरु बच्चे पैदा करना।
घर को बनाना, बच्चे पढ़ाना, अरु उनकी शादी करना।।
खाली समय में टीवी देखा, और रोज अखवार पढ़ा।
निंदा और प्रशंसा में ही, यह जीवन बरबाद किया।।

कभी न सोचे चेतनराजा! मैं हूँ कौन, कहाँ से आया?
मिला था मानव जीवन मुझको, मैंने क्या खोया पाया?
जो-जो काम किये हैं मैंने, क्या ये पशु भी नहीं करते?
घर भी बनाते, बच्चे करते, रोज ही भोजन वे करते।।

मैं तो पशुवत् जिया अभी तक, कुछ भी नया ना काम किया।
धर्माराधन करूँ यदि ना, तो जीवन बरबाद किया।।
मैं अनादि ध्रुव जीव तत्त्व हूँ, मैं अब उसको जानूँगा।
ज्ञायक में ही करूँ 'समर्पण' लौट कर अब ना आऊँगा।।

३/११/२०१४ ८.२५ प्रातः

५. इन भावों का फल क्या होगा?....

मनवाला है मानव, अतः सोचता बहुत है।
कमाने की कोशिस में, रोजाना खोता बहुत है।।

सोचता हमेशा ही, मुझे मिले धन-पद अरु कार।
एक छत्र हो राज्य हमारा, चाहे घर हो या बाजार।
इसके पास साइकिल, उसके पास कार क्यों है?
यह इतना व्यस्त, वह सड़क पर बेकार क्यों है?
इसने कितने में और कब बनाया होगा मकान?
उसकी देखो दिन भर, कितनी चलती है दुकान।
सोचता है गरमी में; आज इतनी गरमी क्यों है ?
लेना एक न देना दो, फिर भी बाजार में नरमी क्यों है?
किसके कितने? गोरे-काले हैं बेटी और बेटा।
कौन खाट पर, कौन टाट पर क्यों और कैसे लेटा?
कुछ नहीं लेना, पर सब्जी मंडी में जाकर पूछे-
भाई साहब 'इन फलों का भाव क्या होगा ?'
पर मन्दिर में या अन्दर में कभी न सोचे-
हे जीवराज 'इन भावों का फल क्या होगा?'

०६.
चाह नहीं है.....

चाह नहीं है, सुख सुविधा में रहकर पाप कमाऊँ।
चाह नहीं है पुण्य कमाकर, स्वर्गादिक पद पा जाऊँ।।
चाह नहीं है धन पद-यश पाकर, बीच सभी के इठलाऊँ।
चाह यही है जिनवचनों में रमकर निज पद पा जाऊँ।।१।।

चाह नहीं है प्रभु गुण गाकर, मैं गायक बन जाऊँ।
चाह नहीं है लिख-लिख कर मैं लेखक कहलाऊँ।।
चाह नहीं चलूँ भीड़ के आगे, अरु नायक कहलाऊँ।
चाह यही है इस जीवन में,मैं बस ज्ञायक ही कहलाऊँ।।२।।
२०/०९/१४

मतलबी संसार.....

मतलबी है सब ही संसार, किसी को नहीं किसी से प्यार।
मत करो कषायों का व्यापार, न देखो अपनी जीत व हार।।
ता उम्र रहा जडता से ही नेह, नहीं कीना चेतन से स्नेह।
जैन होकर भी भटके संसार, नहीं देता जहाँ कोई पनाह।।
न अब तुम करो राग अरु द्वेष, मिटें जीवन के सारे क्लेश।
रहो फिर निज चैतन्य प्रदेश, अतीन्द्रिय आनंद पाओ हमेश।।
१७:११:१४ ०८:४५

०७.
अन्तर्विरोध.....

कविता बनाता है, गीत बन जाता है।
सुख का खजाना है, पर दुःख को पाता है।।
रात-दिन लाभ चाहे, हानि ही होती है।
खुशियों की चाहत ही, आँखें भिगोती है।
मिलता है मुझको जो, मन को ना भाता है।
जो मन को भाता है, भाग वह जाता है।
हाथ-पैर टूट रहे, बैंक में न खाता है।
लोग फिर भी पूछ रहे, क्यों भइया साता है?
दुनिया की देखो, कुछ अजब ही रीति है।
मारती है जूते पर, कहती यह प्रीति है।
जीवन में देखो, कितना अन्तर्विरोध है।
पापों को करते पर, मोक्ष का अनुरोध है।।
खोजता है सुख, जड़ द्रव्यों के पास है।
सुख कहीं बाहर नहीं, तेरे ही पास है।।
'समर्पण' कर निज में ही, मिटे पर की आस है।
क्योंकि सुख दूर नहीं, खुद ही के पास है।
३०/१०/२०१४

०८ भेदविज्ञान

दूध रहे पानी के संग पर, दूध नहीं पानी होता।
सोना हो तांबे के संग पर, सोना ना कभी तांबा होता।
भेड़ों के संग रह सिंह शावक, निज स्वभाव को न तजता।
त्यों आतम रह जड़भावों संग, चेतनता न कभी तजता।।१।।

सोना गिरे भले कीचड़ में, पर उसको न जंग लगती।
अग्नि प्रज्वलित होती प्रतिदिन, पर न उसे दीमक लगती।।
अभ्रक रहे अग्नि के अंदर, पर न कभी वह जलता है।
त्यों आतम संयोग मध्य रह, रागरूप नहीं होता है।।२।।

मैं हूँ जीव द्रव्य गुण भूषित, असंख्यप्रदेशी अरूपी हूँ।
अनादि अनंत है जीवन मेरा, नित चैतन्यस्वरूपी हूँ।।
तीन लोक में सबसे न्यारा, सबसे प्यारा चेतनराम।
चेतनगृह में रहने पर ही, मिलता है सबको आराम।।३।।

२२/११/२०१४ --------------------------

मोह नींद को अब टालो.....

द्रव्य नींद में सोकर के ज्यों, अपनी सुध-बुध खोते हैं।
चोर माल ले जाते हैं, हम पड़े-पड़े फिर रोते हैं।
त्यों अनादि से भाव नींद में, चेतनराजा सोया है।
निजस्वरूप को भूल स्वयं ही, रत्नत्रय धन खोया है।।
प्रतिदिन टूटे द्रव्य नींद तो, मोह नींद को अब टालो।
क्षमा-मार्दव-आर्जव सत् शुचि, गुण अनंत की निधि पालो।। १७:११:१४
८:१५

०९. अब हम आतम को पहचाना....

अब हम आतम को पहिचाना
अब तो कहीं न आना-जाना।
निज आतम को बिन पहिचाने,
दु:ख पाये जो, प्रभु ही जाने।।
पर में अपनापन है कीना,
विषय-कषायों में चित दीना।।
पाप किये हैं, मैं मनमाने,
भक्ष्य-अभक्ष्य कछु नहीं जाने।
न्याय-नीति का ध्यान किया ना,
जिनवच अमृत कभी पिया ना।
इसीलिये मैं भव-भव भटका,
नरक निगोदों में ही अटका।
महाभाग्य है जिनश्रुत पाना,
जिनश्रुत पाकर आतम जाना।
अब श्रद्धा का करो 'समर्पण',
मिट जायेगा भव का भ्रमण।
आज कहो- हम आतम जाना,
अनंत सुख का मिला खजाना।।
३१.१०.१४ प्रात: ९.२३

१०-फिर मत कहना क्या पाप कमाये?

पापोदय जब आता है,
तब हाय-हाय चिल्लाता है।
क्या खाये और क्या पिये,
हे प्रभु! मैंने क्या पाप किये?

प्रभु की वाणी में आये,
तूने सब ही पाप कमाये।
रात-दिना तू खाये-पिये,
कोई मरे या कोई जिये।
मद्य-मांस सब खाये तूने,
मधु भी गले लगाया तूने।
पर निंदा, अरु चुगली चोरी,
पाप किये अरु सीना जोरी।
पर नारी से नैन लड़ाये,
अब कहता क्या पाप कमाये?

एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक
धन हित कुचला है मनुष्य तक।
पूजा छोडी, स्वाध्याय छोड़ा,
आतमहित से है मुँह मोड़ा।
कर की चोरी और मिलावट,
पाप रुचे अरु हित में थकावट।

साधर्मी से प्रेम करे ना,
अरु अधर्म से दूर भगे ना।
रागी पूजे, द्वेषी पूजे,
देहली पूजे, तराजू पूजे।
वीतरागता चित्त धरे ना,
दया-दान तू कभी करे ना।
आर्त रौद्र ध्यानों के द्वारा,
गया तिर्यंच-नरक में मारा।
सारे पाप उदय में आये,
अब कहता क्या पाप कमाये?

पर निंदा अरु चुगली छोड़ो,
देव-धर्म-गुरु से नाता जोड़ो।
छोड़ो मिथ्यात्व अरु कषायें,
सब पापों को दूर भगायें।
सरल-सत्य व्यवहार करो नित,
लक्ष्य बनाओ, इक आतमहित।
धन के पीछे, ना धर्म गंवाओ,
रोजाना तुम मन्दिर जाओ।
पूजन अरु स्वाध्याय करो तुम,
भक्ष्याभक्ष्य विवेक करो तुम।
पूज्य-अपूज्य विवेक करो तुम,
आतमहित के लिए जिओ तुम।

करो 'समर्पण' जो पाप कमाये,
फिर मत कहना–क्या पाप कमाये?
५/११/१४ ५.०० शाम

११. बेवफा–

उसकी सुन्दरता पर मैं मोहित हो गया,
प्रतिक्षण प्रतिपल उसे ही निहारने लगा।
मैं तो उसके प्यार में दीवाना हो गया,
खाना-पीना, उठना बैठना ही भूल गया।।

रात-दिन उसके ही सपने देख रहा था,
उसे अपने दिल में बसाने की सोच रहा था।
उसका हाथ पकड़ूंगा, तो न छोड़ूंगा कभी,
उसके बिना अब एक दिन भी ना रहूँगा कभी।

हर दिन नये-नये उपहार लाता, उसको श्रृंगार के,
छप्पन भोग के साधन जुटाता, उसके आहार के।
पर वह मेरी तरफ कभी देखे या मुझसे बोले नहीं,
मेरी मुस्कराहट देखकर भी कभी मुस्कराये नहीं।

इस रुखाई को मैं उसकी समझने लगा बेवफाई।
पर अचानक एक दिन वह, मेरे नजदीक आई।।
मेरे दिल की धड़कन बढ़ी, हर्ष और रोमांच हुआ।
मुझे लगा जैसे कि आकर के उसने मुझे छुआ।

वह बड़े ही प्यार से बोली, मानो कानों में मिश्री घोली।
तेरे जैसे मिले हजारों, मैं ना कभी किसी की होली।
तूं चेतन अरु मैं हूँ अचेतन, तूं है अरूपी, मै रूपी भाई।
मैं तेरी न कभी हो सकती, इसे न समझ मेरी बेवफाई।

मुझे अपनी जड़ता अरु स्वरूप का हुआ भान।
श्रद्धा-ज्ञान का कर समर्पण, किया निजानंद का पान।
समझ में आया, मैंने ही की थी काया से झूठी प्रीति।
अब छोड़ता हूँ काया को बेवफा कहने की झूठी अपनी रीति।।
३/११/१४ १६.१६

क्षमावाणी–

जाने-अनजाने जीवन में, अपराध बहुत से होते हैं।
हैं वही विवेकी भव्य धन्य, जो क्षमा नीर से धोते हैं।।
हे भ्रात! कलुषता दूर करो, हम दूर भ्रान्तियाँ करते हैं।
तुम क्षमा करो प्रियवर हमको, हम क्षमा सभी को करते हैं।।

निज आत्मा को जानना, पहचानना उत्तम क्षमा।
मैं करूँ निज को क्षमा, तुम भी करो निज को क्षमा।
मैं करूँ तुमको क्षमा, मुझको क्षमा कर दीजिए।
क्रोधाग्नि का परित्याग कर, निज शान्त रस को पीजिए।।

१२.महावीर भगवान की जय हो

मर्दन किया मोह का जिसने, क्रोध भाव को नष्ट किया।
हाथ नहीं हथियार है फिर भी, मान शत्रु को भगा दिया।।१।।
वीत लोभ अरु माया होकर, जीता सभी कषायों को।
रति करते नहीं पंच विषय में, त्यागा सभी विभावों को।।२।।
भक्तजनों से राग नहीं है, नहीं अभक्तों पर है द्वेष।
गति चारों का कर अभाव प्रभु, पाई पंचम गति परमेश।।३।।
वाद-विवाद से धर्म न होता, करलो सब जन आतमज्ञान।
नहीं अपेक्षा करो किसी की, तभी बनोगे तुम भगवान।।४।।
कीमत नहीं स्वयं की जिसको, उसकी कीमत कहीं नहीं।
जब कीमत निज की आ जाये, उससे कीमती कोई नहीं।।५।।
यदि निज स्वभाव को न जाना तो,चतुर्गति का भ्रमण मिले।
होनहार यदि होय भली तो, महावीर का पंथ खिले।।६।।
महावीर भगवान की जय हो, तन-मन से जब यह गाये।
धन्य-धन्य है उनका जीवन, महावीर गुण जो गाये।।७।।
करूँ '**समर्पण**' निज का निज में, लौट न भव में आऊँगा।
महावीर के पथ पर चलकर, महावीर बन जाऊँगा।।८।।
१६/१२/१४ प्रा. ८.३०

सत्य अहिंसामय धर्म न होता,वीतरागता पंथ ना होता।
शुद्ध-बुद्ध भगवंत सदा मैं, मंगलमय संदेश न होता।
षट् द्रव्यात्मक लोक अकृत्रिम, निजाश्रय से धर्म सदा हो।
कौन बताता इस वसुधा पर,यदि महावीर का जन्म न होता?

१३.
विरोधाभास

चैत्र शुक्ल तेरस को जन्मे, माँ त्रिसला के प्यारे हो।
फिर भी आप अजन्मे हो, अरु सारे जग से न्यारे हो।।१।।
हाथ नहीं हथियार लिये हैं, नहीं किसी से युद्ध किया।
फिर भी प्रभु अतिवीर, वीर, महावीर, तुम्हारा विरद हुआ।।२।।
ना कण पर, ना जन पर ही, किंचित् अधिकार तुम्हारा है।
त्रिभुवनपति फिर भी कहलाते, यह अतिशय सुखकारा है।।३।।
मोहभाव से रहित हो गये, दया किसी पर नहीं करते।
परम दयालु, दीनानाथ हो, फिर भी लोग कहा करते।।४।।
मुनि दीक्षा धारी थी जिस दिन, तब से प्रभु, न मुँह खोला।
पर कहलाता प्रभो आपने, वस्तु स्वरूप शुद्ध बोला।।५।।
तुम पर के कर्ता नहीं प्रभु हो, एक मात्र बस ज्ञाता हो।
फिर भी जगकल्याणक हो, अरु मोक्षमार्ग के दाता हो।।६।।
दिखता है विरोध सा प्रभु पर, तुम सदैव अविरोधी हो।
स्याद्वाद से समझ जाये सब, चाहे भक्त-विरोधी हो।।७।।
पर का कर्ता-भोक्तापन तज, अविरोधी होऊँ तुमसा।
करूँ '**समर्पण**' निज का निज में, होऊँ महावीर जैसा ।।८।।
१५/१२/१४ १०

तेरापंथी-तारणपंथी, बीसपंथी सब दिखते हैं।
आतमहित पंथी, आगमपंथी, कहीं-कहीं ही दिखते हैं।

१४. चौबीसवें तीर्थंकर

एक आत्मा ध्याया जिसने, दो नय जिनने बतलाये हैं।
रत्नत्रय ही मोक्षमार्ग है, अनन्त चतुष्टय प्रगटाये हैं।।१।।
पंच पाप को त्याग जिन्होंने, पंचमहाव्रत धारे हैं।
जीव मात्र के हित उपदेशी, जन-जन को जो प्यारे हैं।।२।।

छह द्रव्यों से रचा विश्व है, सात तत्त्व बतलाये हैं।
अष्टकर्म से रहित सिद्ध हैं, नव पदार्थ समझाये हैं।।३।।
दशलक्षण है जीवन जिनका, ग्यारह प्रतिमा बतलाई।
बारह श्रावक के व्रत होते, महिमा प्रभु ने समझाई।।४।।

तेरह विध चारित्र धारकर, चौदह गुणस्थान पार हुए।
पन्द्रह प्रमाद का कर अभाव, सोलह भावन भा जिनदेव हुए।।५।।
सत्रह श्रावक के नियम बताये, और असंयम के स्थान।
अष्टादश दोषों से विरहित, पूजित महावीर भगवान।।६।।

उन्निस जीव समास बताये, बीस प्ररूपणा समझाई।
इक्किस भाव औदयिक नाशे, ऐसी प्रभुता है पाई।।७।।
बाईस परिषहों को जीता, महावीर है सार्थक नाम।
भेद वर्गणा के तेईस बताये, इक दूजे का करे न काम।।८।।

हो चौबीस परिग्रह विरहित, जो हैं आकुलता के धाम।
रंचमात्र जब नहीं परीग्रह, आकुलता का फिर क्या काम।।९।।

प्रभु के केवलज्ञान मांहि, सब लोकालोक झलकता है।
लीन रहें निज ज्ञायक में ही, लेश नहीं आकुलता है।।१०।।

वीतराग-सर्वज्ञ जिनेश्वर, हो चौबीसवें तीर्थंकर।
तव प्रसाद से हमें मिला है, जिनशासन यह अभयंकर।।११।।
वीर की वाणी न होती तो, हम अविवेकी ही रहते।
निज स्वरूप को नहीं जानते,राग-द्वेष से दुःख सहते।।१२।।
महावीर की वाणी से ही निजस्वरूप पहचाना है।
करूँ 'समर्पण' निज का निज में, महावीर बन जाना है।। १३।।
१८/१२/१४/ प्रा.९.०५

वीर शासन जयन्ती

वैशाख शुक्ल दशमी के शुभ दिन, वीर ने पाया केवलज्ञान।
समवशरण में प्रभु विराजे, पर हुआ उपदेश महान।।
जिनवचनामृत पान किये बिन, हुये तृषातुर सारे जन।।
वीर प्रभो! अब तो कुछ बोलो, गरजो-बरसो हरो तपन।।
६६ दिन के बाद भरत में, सावन का महिना आया।
भव्यजीव के भाग्य जगे, अरु वचन योग भी है आया।।
इन्द्र गये, गौतम को लाये, भविजन पर कीना उपकार।
इन्द्रभूति का पा निमित्त फिर, बही भरत में अमृत धार।।
धन्य वीर प्रभु, धन्य हैं गौतम, धन्य वीर की है वाणी।
धन्य हुई श्रावण की एकम, शासन पाया सुखदानी।।
१/८/२०१५

१५.गुरुदेव जयन्ती आज...

गुरुदेव जयन्ती आज, मनाओ सब मिलके।
सब मिल के-सब मिलके, गुरुदेव जयन्ती आज...। टेक।
उमराला में जन्म हुआ था,
मात उजमबा आनन्द हुआ था।
खुशियों छाईं चारों ओर, मनाओ सब मिल के।।१।।
गौर वर्ण अरु सुन्दर काया,
मन में ज्ञान वैराग्य समाया
करें खूब स्वाध्याय... मनाओ सब मिल के।।२।।
कर्ता-कर्म का ज्ञान कराया,
जीव है जानन हार बताया।
मानो जाननहार ...मनाओ सब मिलके।।३।।
उपादान निज शक्ति बताई
जो अनुकूल निमित्त है भाई।
...मनाओ सब मिलके।।४।।
निश्चय अरु व्यवहार बताया
उपादेय निश्चय समझाया,
व्यवहार निश्चय के साथ....मनाओ सब मिलके।।५।।
स्वर्णपुरी को तीर्थ बनाया,
घर-घर में आगम पहुँचाया,
है अनन्त उपकार...मनाओ सब मिलके।।६।।
२२/१२/१४

१६.पर तुम थे सबसे न्यारे....

उमराला में जन्में थे जो, मोती उजमबा के प्यारे।
शिशु तो रोज सहस्र जन्मते, पर तुम थे सबसे न्यारे।

बचपन से ही ज्ञान-ध्यान मय, जिनका सारा जीवन था।
विषय-कषायों से विरक्त, जिनका अपना अन्तर्मन था।।

वीर-कुन्द की वाणी ने, उनका सारा जीवन बदला।
छोड़ के मिथ्या मार्ग को, पाने सत्य सनातन निकला।।

क्रिया काण्ड में मस्त जगत को, नूतन ज्ञान प्रकाश दिया।
कर्तापन के अहंभाव को तुमने, जड़ से हिला दिया।।

पर का ना पर्याय का कर्ता कोई, होना है जो होता है।
रंग-राग से भिन्न भेद से, आतम तो बस ज्ञाता है।

कर्तापन का भूत भगा कर, ज्ञातापन तुम बता गए।
क्रियाकाण्ड से बाहर लाकर, मेरे गुरुदेव चले गए।।

मेरी प्रभुता मुझे बताई, यह उपकार न भूलूंगा।
अपनी प्रभुता-विभुता लखकर, लौट न भव में आऊँगा।।
१३/१०/१४ ९.५०

१७- गुरुदेव बताओ कहाँ गये...?
(तर्ज-वीतरागी देव तुम्हारे...)

मेरे प्यारे गुरु कहान तुम, अभी यहाँ थे, कहाँ गये?
कहाँ गये? तुम कहाँ गये? गुरुदेव बताओ कहाँ गये?
अभी-अभी तो भगवान आत्मा, कहकर मुझे बुलाया था।
मैं कारण परमात्मा हूँ, यह कहकर मुझे जगाया था।
मैं परमात्मा हूँ - निर्णय कर, ऐसा मुझे बताया था।
निर्विकार निर्दोष स्वरूपी समयसार समझाया था।।
अभी-अभी तो यहाँ बैठे थे, अभी-अभी वे कहाँ गये?१ ।।

सारा जग जब क्रियाकाण्ड में धर्म मानकर बैठा था।
मैं ही पर का कर्ता-धर्ता अहंकार में ऐंठा था।।
पर्यायों में मस्त हुआ था, द्रव्य को भूला बठा था।
हो निमित्त का दास, निजातम शक्ति भूला बैठा था।।
पर्यायों से दृष्टि हटाकर, ध्रुवस्भाव बतला गये।।२ ।।

हे गुरुदेव! न रूठो अब तो जल्दी से तुम आ जाओ।
राग-रंग में मस्त जीव को, ज्ञानस्वभावी बतलाओ।।
आप न आये यदि वसुधा पर, म जीवों का क्या होगा?
पुण्य करो अरु मोक्ष में जाओ, तब ऐसा प्रवचन होगा।
पुण्य-पाप से पार आत्मा दिखलाकर तुम कहाँ गये?३ ।।

आप न आये कौन कहेगा? मुझको भगवान आत्मा।

चिदानंद चैतन्यधाम मैं, हूँ कारण परमात्मा।।
कौन कहेगा? इस धरती पर, पर्यय क्रमबद्ध होती है।
निज स्वभाव को भूल आत्मा, चारों गति में रोती है।।
क्रमबद्धपर्यय का ज्ञान कराकर, गुरुदेव तुम कहाँ गये?४।

कौन कहेगा? बंध का कारण, यही शुभाशुभ भाव हैं।
निज आतम के हैं ये विरोधी, दु:खदायी ये विभाव हैं।।
कौन कहेगा? निज आतम की प्रीति ही सम्यग्दर्शन।
सम्यग्दर्शन नहीं हुआ तो, विफल गया मानव जीवन।।
सम्यग्दर्शन का विषय आत्मा बतलाकर तुम कहाँ गये?५ ।।

कौन कहेगा? हूँ अनंत गुणमयी सदा ही मंगलमय।
अरस-अरूपी, ज्ञायक जानो, मानो तो हो जाओ अभय।।
जिनभावों से तीर्थंकर हों, वे भी धर्म नहीं होते।
मात्र मुक्ति की अभिलाषा से कोई मुक्त नहीं होत।।
कर्मबंध से रहित आत्मा, मुक्तस्वभावी बता गये।।६ ।।

13/14/14 7.35 शाम

अपने किये न होय कुछ, तदपि विकल्प बहु होय।
शुभ विकल्प से पुण्य हो, पाप अशुभ से होय।।
शुभ विकल्प बहु होय न पर का कर्ता मानो।
मैं तो ज्ञायकभाव सदा निज को पहचानो।।
ज्ञायक निज को मानो, कर्म का बन्ध न होगा।
हो विकल्प पर ज्ञाता जानो द्वन्द न होगा।।

१८.गुरुदेव कह गये सभी से....

गुरुदेव कह गये सभी से जो निज आतम ध्यायेगा।
पर से ममता तोड़ेगा, वह निजानंद को पायेगा।।टेक।।

परद्रव्यों को अपना माना, निज स्वरूप को भूल गया।
पुण्योदय से मिला जो तन-धन, उसको पाकर फूल गया।।
पुण्योदय से पार मानकर, जो निज आतम ध्यायेगा।।१ ।।

पापोदय में रोग-शोक ने, जब भी इसको घेरा है,
हे भगवन् ! अब मुझे बचाओ, ऐसा कहकर टेरा है।।
पापोदय से भिन्न आत्मा जो चिदातन ध्यायेगा।।२ ।।

कर्मोदय से जो भी मिलता, वह जड़ का संयोग है।
तन-मन-धन अरु परिजन, पुरजन का आतम में वियोग है।।
पद-पैसा अरु परिवार से भिन्न आत्मा ध्यायेगा
आकुलता को छोड़ेगा वह निजानंद को पायेगा।।३ ।।

२७/११/१४ १०.००

महावीर के पथ पर चलकर, महावीर बन जाने को।
सभी जीव भगवान स्वरूपी,यह संदेश बताने को।
मैं हूँ अरागी पूर्ण निरम्बर, सत्य यही स्वीकार किया।
महावीर के जन्म दिवस पर, परिवर्तन स्वीकार किया।।

१९. ध्रुव से ही ममता जोड़ो..

सिंचित् करो वृक्ष कितना भी, पतझड़ निश्चित ही होगा।
पतझड़ भी तो स्वाभाविक है, नव किशलय उद्गम होगा।।
वृक्ष वही रहता है लेकिन, पत्तों का आना-जाना।
नव किशलय पर मोहित होकर, शाश्वत वृक्ष न ठुकराना।।

जो किशलय की सुन्दरता लख, वृक्ष को ही ठुकराते हैं।
अध्रुवता के आलंबन से , आकुलता ही पाते हैं।।
'स्वर्णपुरी' में कहानगुरु ने, आतम तत्त्व दिखाया है।
द्रव्य-भाव-नोकर्मों से भी, निज को भिन्न बताया है।।

त्यों पर्यायें आती-जातीं, आतम तो है 'शाश्वत धाम'।
'ध्रुवधाम' के आलंबन से, चेतन को मिलता विश्राम।।
देव-शास्त्र-गुरु हैं 'स्मारक' निज कारण परमातम के।
'आत्म साधना' करके भाई, दर्श करो शुद्धातम के।।

चेतनमय 'चैतन्यधाम' हूँ, अनंत गुणों का हूँ आयतन।
'मंगलायतन' में जो रम जाये, वह पहुँचे सिद्धायतन'।।
चित्शक्ति का धारक हूँ मैं, नाम 'चिदायतन' है मेरा।
गुण-पर्यय के पुष्प खिले रहे, उस 'आश्रम' में करूँ बसेरा।।

'सन्मति के संस्कार' प्राप्त कर, मम मति सन्मति हो जाये।

नंदीश्वरवत् हूँ मैं अकृत्रिम, परिणति सोना हो जाये।।
'ज्ञानोदय' ही नित्य हो रहा, राग-द्वेष का नहीं प्रवेश।
पर्यायों से पार देख लें, जीवन में हो नहीं क्लेश।।

पर्यायें तो किशलयवत् ही, आने-जाने वाली हैं।
आतम तो है वृक्ष सरीखा, अनुपम महिमाशाली है।।
अध्रुवता का लक्ष्य छोड़कर, ध्रुव से ही ममता जोड़ो।
निज का निज में करो 'समर्पण' ,चतुर्गति से मुँह मोड़ो।।
१५/४/१५ ४-१५

जग के ही सारे जीव, दुखिया जो हैं सदीव,
उनको बताया सब सिद्ध के समान हैं।
रात-दिन कर्म करें, फल में आकुलता भरें,
जो कहें क्यों करो खुद का अपमान है।
रंग-राग से जुदा, खुद का ही जो खुदा,
आत्म शक्ति जो बताये, निश्चित महान है।
पर्यय से पार देखे, भावी भगवान देखे,
वह कोई और नहीं गुरुवर कहान है।।

२०. गुरुदेवश्री कहानजी स्वामी......

गुण अनंतमयी भगवान आत्मा, जिसने हमको दिखलाया।
रुकना कभी न राग-द्वेष में, जिसने हमको सिखलाया।।१।।
देवों का भी देव स्वयं है, अन्य किसी सेक्या मांगूं।
वसुधा पर है कोई न मेरा, दुखद मोह सबसे त्यागूं।।२।।
श्री सीमंधर दिव्य देशना, सुनकर जो यहाँ आये थे।
कथा सुनाई शुद्धातम की, प्रभो संदेशा लाये थे।।३।।
हानि लाभ न संयोगों से, आतम तो निरपेक्ष अरे।
नहीं किसी से लेना देना, आतम जन्मे नहीं मरे।।४।।
जीवत्व शक्ति का धारक हूँ मैं, मात्र जानना मेरा काम।
स्वामी हूँ मैं अनंत गुणों का, सिद्धों से भीकुछ न काम।।५।।

होती हैं क्रमबद्ध सदा ही, सब द्रव्यों की पर्यायें।
कर्तापन का नाश करें तो, सच्चा सुख हम पा जायें।।६।।
रंग-राग से भिन्न सदा मैं, गुण भेदों से पार अरे!
स्व चतुष्टय में ही रहता पर, मुझमें कोई भेद न रे।।७।।
पर्यायें तो सदा पलटतीं, मैं त्रिकाल ज्ञायक ही हूँ।
मुक्ति की भी ना अभिलाषा, मैं तो मुक्ति नायक हूँ।।८।।
जानूँ पर को अप्रभावित रह, यह तो है व्यवहार कहा।
जानूँ-देखूँ मात्र स्वयं को, यह तो है परमार्थ अहा।।९।।
दुखद काल में **कहान गुरु** ने, सुखद आत्मा दिखलाया।
है महान उपकार जिन्होंने, मेरा वैभव बतलाया।।१०।।

करूँ 'समर्पण' निज को निज में, बनूँ सिद्धों का लघुनंदन।
जन्म जयन्ती के अवसर पर, **कहान गुरु** को है वंदन।।

१६/४/१५ ८-२०

----

१९. अच्छे दिन आने वाले हैं.....

हम तो भइया गोरे हैं न काले हैं,
अब मेरे अच्छे दिन आने वाले हैं।।

नरभव पाकर, जिनश्रुत पाया, अरु सत्संगति पाई।
स्वाध्याय में मन लगता है, निज आतम हित रुचि आई।।
इसीलिए मैं कहता हूँ अब अच्छे दिन आने वाले हैं।।१।।

देव के दर्शन-पूजन में अब, मेरा मन है लगता।
सप्त व्यसन, अरु पंच पाप से, अब मेरा चित भगता।
इसीलिए मैं कहता हूँ अब अच्छे दिन आने वाले हैं।।२।।

चार कषायों से मुँह मोड़ा, रात्रि भोजन भी छोड़ा।
गृहीत मिथ्यात्व को ठोकर मारी, पर से नाता तोड़ा।।
इसीलिए मैं कहता हूँ अब अच्छे दिन आने वाले हैं।।३।।

२६/११/१४ ३.००

२०. संकल्प

महाभाग्य से जिनदर्शन अरु जिनवच का श्रद्धान मिला।
मानो मरणासन्न जीव को, नूतन जीवन दान मिला।।
निज आतम की महिमा सुन, खोई शक्ति निज पाई है।
अब तक संयोगों की महिमा, अब निज महिमा प्रगटाई है।।
निज वैभव को मैं भूला था, परद्रव्यों में भरमाया था।
औदयिक भाव को देख-देख मेरा मन अति शरमाया था।।
पर आज समझ में आया है, मैं दीन हीन कमजोर नहीं।
मैं हूँ अनंत पुरुषार्थमयी, मेरे जैसा बलजोर नहीं।।
चैतन्यधातु से निर्मित निज, चैतन्य सदन में राज करूँ।
अब नहीं रही पर की चिन्ता, सन्तुष्ट किसे नाराज करूँ।।
मेरी महिमा प्रभुवर जाने, अब मैं भी उसको जानूंगा।
जन्म-मरण अरु जरा रहित निज स्वभाव पहचानूंगा।।
जब तक निज में रम ना जाऊँ, जिनवच सुनूं सुनाऊँगा।
आबाल वृद्ध जिनमत समझें, ऐसा पुरुषार्थ जगाऊँगा।।
जागा है नव उत्साह अरे! नित यही भावना भाऊँ मैं।
बाह्य प्रदर्शन को तजकर, घर-घर जिनदर्शन पहुंचाऊँ मैं।।
तन-मन-धन सब करूँ 'समर्पण', सोतों को अरे जगाऊँ मैं।
ज्ञान केन्द्र हों जगह-जगह, यह संदेश फैलाऊँ मैं।।
वीतराग-सर्वज्ञ कथित, संदेशों को पा, मृत हृदय खिला।
महाभाग्य से जिनदर्शन अरु जिनवच का श्रद्धान मिला।।

६/१/१५ ८.४५

२१-
आत्मार्थी परिवार कैसा हो ?

देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धानी, स्वाध्याय से भी हो प्रेम।
वृद्धजनों की सेवा-आदर, करना जिनका होवे नेम।।

प्रातःकाल मिलें जब परिजन, जय जिनेन्द्र ही वे बोलें।
भजन, गीत, संगीत चलाकर, भक्ति रस को जो घोलें।।

परिजनों से साधर्मीवत् , वात्सल्य का हो व्यवहार।
करें प्रशंसा इक दूजे की, सबसे मृदुमय हो व्यवहार।।

न्याय-नीति से पति कमाकर, जब भी निज घर में आवे।
शुद्ध-सात्विक, भोजन पत्नी, वात्सल्य से उन्हें करावे।।

अन्याय-अनीति अरु अभक्ष्य के, साथ तजें जो तीन मकार।
समता, संतोष, सहयोग, समन्वय, धारें सरलता पंच सकार।।

जबान-जीवन रहे धर्ममय, ऐसा आत्मार्थी परिवार।
आत्मार्थी तो रहे चैन से, सुख-शान्ति से रहे परिवार।।

५-१२-१४ सायं ७.०० करेली

२२.चैतन्य चिंतामणि...

एक मनुज जब उदर पूर्ति हित, जनपथ पर भ्रमता फिरता।
भीख मांगता फिरता कभी वह, कभी कहीं सेवा करता।।
रूखा-सूखा जो भी मिलता, खाकर के वह सो जाता।
प्रातः उठकर धक्के खाता, जाये कहाँ न समझ आता।।
कभी किसी को मालिक कहता, सेवा रके दुःखी रहता।
पर कोई न ऐसा मिलता, जो उसका दुःख हर होता।।

भटक-भटक कर गिरते-पड़ते, दुःखमय ही जीवन जीता।
कभी भोजन भरपेट न मिलता, कभी मात्र पानी पीता।।
पुण्योदय से इक दिन उसने, वन में इक पत्थर पाया।
चमकदार था, शानदार था, उसे उठाने का मन आया।।
पत्थर लेकर वृक्ष तले, वह उदासीनता से आया।
पत्थर उलटे-पलटे लेकिन, उसे समझ न कुछ आया।।

दोपहरी की भरी धूप में, भूखा-प्यासा बैठ गया।
लगता है कि आज मृत्यु है, प्रभु के भरोसे बैठ गया।।
भूख-प्यास से मन में आया, हे प्रभु! पानी, भोजन दो।
चिंतन करते ही समक्ष था, उसने मन चाहा था जो।।
वह विस्मय से लगा देखने, भोजन दाता कोई न था।
मधुर मिष्ट भोजन झट कीना, कई दिनों का भूखा था।।

पेट भरा अरु विचार आया, पलंग मिले तो सो जाऊँ।
तत्क्षण ही पलंग था सम्मुख, सोचा अब सो ही जाऊँ।।

जागा अरु तब समझा उसने, चमत्कार सब पत्थर का।
घर-भोजन, धन-धान्य मिले, यशगान किया उस पत्थर का।।
सर्व अर्थ की सिद्धि हुई, उस अनादि दुखिया जन की।
हो प्रसन्न कहता आनंद से, रही आस न जन-जन की।

त्योंही यह जीव अनादि से भ्रमण कर रहा इस जग में।
सुख-शान्ति-आनंद को पाने, भटक रहा है इस जग में।
कभी ताकता मुँह विषयों का, कभी भटकता कषायन में।।
कभी कुदेव-कुगुरु को पूजे, कभी कुधर्म सेवन करता।
सुख नहीं पाता, क्षण भर भी अरु, दुःख में ही जीता मरता।।
कहाँ जाऊँ अरु करूँ प्रभु क्या? जिससे शान्ति मिल जाये।
आकुलता के कण्टक हटकर, सुख की बगिया खिल जाये।।

पुण्योदय से जिनधर्म मिल गया, जो है चिन्तामणि जैसा।
रत्नत्रय हो, दशलक्षण हो, जब जो चाहो, होगा वैसा।।
क्षुधा-काम अरु मोहभाव सब इक क्षण में ही नाश करे।
अष्ट कर्म का कर अभाव, अरु जन्म-मरण का नाश करे।।
धर्मरत्न तो इतना प्यारा, बिन चाहे ही सब कुछ दे।
चेतन राजा जागो प्यारे, धर्म रत्न पा सब दुःख हर ले।।
तन-मन-धन का करो समर्पण जो चाहो सच्चे सुख को।
चिंतामणि सम धरम जिन पाया, अब न पाओ कभी दुःख को।।
१९/१२/ ०१.३०

२४.

अज्ञ कृषक ज्यों बंजर भूमि में, उत्तम बीज वपन करता,
अंकुर होता नहीं जब उसमें, देख-देख दुःख ही सहता।
विषय-कषाय से तप्त हृदय में, तत्त्वज्ञान को जो बोता।
पर सम्यक्त्व उदित नहीं होता, आकुलता ही वह ढ़ोता।।
विज्ञ कृषक ज्यों खेत जोत, भूमि को कोमल करता।
उस भूमि में बीज वपन कर, निज-पर का है उदर भरता।।
त्यों तुम भी वैराग्य भाव ला, अपने चित को कोमल कर।
तत्त्वज्ञान का बीज बोओ तो, फल होवेंगे आनंदकर।।

२५.

ये दुनिया तो दीवानी है, पर के ही गीत सुनाती है।
मैं अपने में अठखेली करता, पर की ना बात सुहाती है।।
धन वैभव और मान प्रतिष्ठा, मनमोहक तो लगते हैं,
इन सबकी ही चाहत तो, भव-भव में हमें रुलाती है।।१।।

नरतन को देनेवाली जननी, लोरी गाकर हमें सुलाती है।
पर देखो जिनवाणी माता, थपकी देकर हमें जगाती है।।
मोह नींद में सोते-सोते, काल अनंत बिताया है,
अब तो जागो चेतनराजा, क्यों दुःखदायी नींद सुहाती है।।
१३/१२/१४

२६.
अभिप्राय का खेल....

इक लड़की, जो बेटी अपनी, मात कराये ना उससे काम।
इक लड़की- जो बहू है अपनी, सास बताये काम तमाम।।
बेटी जब भी मां से झगड़े, कोई ना कहता बेटी खराब।
बहू सास से कुछ कह देवे, सास कहे बहू देती जबाब।।
मन में इतना अंतर क्यों है? पद बदले, बदले अभिप्राय।
सारा खेल है अभिप्राय का, विद्वज्जन ऐसा समझाय।।
जब तक तन में अपनापन है, चलता सब तन व्यवहार।
खाना-पीना, सोना-जगना, रात-दिना उस ही से प्यार।।
ज्ञायक में अपनापन जब हो, तब ही मिटता यह व्यवहार।
जानो देखो मस्त रहो अरु, चलता सब स्वतंत्र व्यापार।।
जब तक मिथ्या अभिप्राय है, तब तक चेतन दुःखमय हो।
जब बदले अभिप्राय जीव का, तब जीवन आनंदमय हो।। २०/
१२/१४ १०.४५

आया हाथ समयसार, देखा जब समयसार,
लगने लगा ये जग , सारा ही असार है।
पर का ममत्व टूटा, कर्तापना है छूटा,
कहा भगवान आत्मा ही समयसार है।।
एक ग्रन्थ आया हाथ, पहुँचाया हाथ-हाथ,
समयसार के बिना ये जीवन निस्सार है।।
कहान गुरु ने कहा सुनो भव्यात्मा,
अशरीरी होने को ये ग्रन्थ समयसार है।।

२७.जनम दिन किसका रे भाई..

जनम दिन किसका रे भाई
जो दीखत है इन नैनन सों, सो पुद्गल परछाई।
हाड़-मांस अरु रुधिर की थैली, देखत ही घिन आई।।१।।

देह देवालय में जो सोहै, सो है चेतनराई।
सो तो अजर-अमर अविनाशी, जनमे नहीं कदाई।।२।।

तन जड़, अरु ज्ञानमय चेतन का संयोग जब थाई।
ये संयोग लख कहत मूढ़ जन, मेरा जनम है भाई।।३।।

मैं तो ज्ञानमयी चिन्मूरत, और अमूरत भाई।
जनम-मरण से रहित ज्ञानमय, चेतन देत दिखाई।।४।।

सवैया

मंगल चाहत यदि आओ मंगलायतन,
ध्रुवधाम में ही ध्रुवराज हमें मिलेगा।
नाश नहीं होय कभी, तातैं यह शाश्वत धाम,
चेतन स्वभाव मेरा, चैतन्यधाम कहेगा।।
सारे काज सिद्ध होंय, मैं ही हूँ सिद्धायतन,
सिद्धों बीच रहके अनंत सुख लहेगा।
सोनगढ़ के संत कहें, सुनो भविजन मेरे,

समयसार जाने बिना काज नहीं सरेगा।।

२८.
परम पुनीत पर्व यह पावन..

परम पुनीत पर्व यह पावन, भव्यों को लगता मनभावन।
विषय-कषाय की जलती ज्वाला, चेतन को करती जो काला।
दशलक्षण हैं शीतल नीर, भव-भव की हर लेते पीर।
निज को जान क्रोध को भूलो, मत संयोगों में तुम फूलो।
छल-कपट अरु लोभ को छोड़ो, झूठ-असंयम से मुख मोड़ो।
द्वादश तप में चित को पागो, राग-द्वेष अरु मोह को त्यागो।
तीन लोक में पर नहीं मेरा, अब करना चैतन्य बसेरा।
वीतराग परिणति के दस नाम, राग द्वेष का अब क्या काम।
भव्यों को भादों भी लगता सावन,परम पुनीत पर्व यह पावन।।

सत्संगति.....

सत् स्वभाव के संग में रहना, निश्चय से सत्संग कहा।
जो जन सत् का आश्रय लेते, उनका संग व्यवहार अहा।।
सत् स्वभाव की चर्चा करने, वालों के संग में रहना।
है उपचरित सत्संग भाइयो! यथायोग्य संगति करना।।
सत् संगति से ही यश वैभव, अरु सुख शान्ति मिलती है।
सत्संगति करती है उपकृत, सब दोषों को हरती है।।
२६/११/२०१४ ९.३०

२९. प्रेरणा....

महाभाग्य से नरतन पाया, जिनवर अरु जिनवाणी मिली।
हित-अनहित अरु स्व-पर विवेकी, हम सब को है बुद्धि मिली।।१।।
उदरपूर्ति अरु परिजन सेवा, में ही यदि जीवन बीता।
कितना भी एकत्र करो धन, फिर भी जायेगा रीता।।२।।

आतमहित अरु परहित हेतु, कुछ तो समय निकालो यार।
स्वार्थसिद्धि अरु विकथाओं में, समय गंवाओ मत बेकार।।३।।
निजतन अरु परिजन को पशु भी, प्राण गंवा तक करते प्यार।
ऐसा ही यदि जीवन जीते, तो मनुष्य होना बेकार।।४।।

है अपूर्व अवसर जीवन का, सन्मित्रों की फौज मिली।।
महाभाग्य से नरतन पाया, जिनवर अरु जिनवाणी मिली।।५।।
१२/१/१५

मैं त्रिकाल चैतन्य आत्मा, 'चैतन्यधाम' है मेरा नाम।
व्यय-उत्पाद हो पर्यायों का मैं तो कहलाता 'ध्रुवधाम'
सिद्धस्वरूपी मैं ही स्वयं हूँ, बुधजन कहते 'सिद्धायतन'
पाप गलाऊँ सुख प्रगटाऊँ, ऐसा मैं 'मंगलायतन'।।
भगवान आत्मा कहते देव-गुरु, मैं ज्ञायक मैं आत्मा।
समयसार अरु 'शाश्वत धाम', मैं कारण परमात्मा।।

---

३०. भावना..

रहकर संस्थान में, नेह ज्ञान पाया है।
ज्ञान-धन बांट लें, मन में यही भाया है।।
ये ना कोई दान है, चाहते ना मान है।
अपने गुरु भाइयों से, जुड़ने का गुमान है।।

जब भी मिले स्नातक, तब किया जय जिनेन्द्र।
मधुर ध्वनि सुन-सुन कर, यूं लगा हम सुरेन्द्र।।
अग्रज अब खुशी-खुशी, बांट रहे उपहार।
साधर्मी जब मिले, मानो मिला मुक्ति द्वार।।

आज बिन्दु सा दिखे, सिन्धु सा बनेगा राग।
राग आग त्याग कर, हम बनेंगे वीतराग।।
राग रहे जब तक, वात्सल्य ये महान है।
वात्सल्य जिसके उर, उसे जानता जहान है।।

अग्रजों का पाया नेह, अनुजों को बांट रहे।
असंख्य तारों में छिपे, ध्रुवतारे छांट रहे।।
राग के असंख्य भेद, पर साधर्मी महान है।
क्यों कि इस राग में भी धर्म ही प्रधान है।।

३१-

चुनाव हो गया

चुनाव हो गया, चुनाव हो गया।
जागा मेरा भाग्य, चुनाव हो गया।।
मिथ्यात्व का हराया, सम्यक्त्व को जिताया
अनंत कष्टों से मेरा बचाव हो गया।।
देहबुद्धि छोड़ी अरु आत्मबुद्धि जागी।
तन-धन से अब तो मेरा दुराव हो गया।।
अज्ञानतम हटेगा, अरु ज्ञान रवि उगेगा।
पापों अरु कषायों से बचाव हो गया।।
गठबंधनों को तोड़ा, अपने से नाता जोड़ा।
पराधीनता का अब तो अभाव हो गया।।
२४/१/१५ रात्रि ११.४५

ज्ञान बिना नर घूम रहे हैं,
ज्ञान ही है इक पार उतारन।
ज्ञान बिना मारीचि भ्रमें जग,
ज्ञान ही है इक सुख को कारण।।
सिंह से जब वह सिद्ध बने तब,
आतमज्ञान ही है वहाँ कारण।
ज्ञानोदय हो जब जियके घट,
जन्म-जरा-मृत रोग निवारन।।

३२-

परिणति

ज्यों पति गृह में आकर कन्या,तन-मन अर्पण करती है।
है सुख का भण्डार पति ही, यही समझ वह वरती है।।
सबसे सुन्दर रूप है जिसका, है सबसे वह बलशाली।
है त्रिलोक में पुरुष वही, वह ही महिमाशाली।।
उसके वैभव का पार नहीं है, किसको और क्यों बतलावे?
पति के संग रह चिरकाल तक, सुखमय जीवन वह पावे।

त्यों परिणति भी निज आतम को, सब कुछ अर्पण करती है।
मैं त्रिकाल हूँ गुण अनंतमय, खुद को घोषित करती है।
ध्रुव के स्थापन के हेतु, कोना-कोना रिक्त किया।
है त्रिलोक में सबसे सुन्दर, सबसे न्यारा मेरा पिया।।
है क्षणिका पर जो अपने को, अनादि अनंत ही बतलावे।
सद्गुरु कहते यह परिणति ही , सम्यग्दर्शन कहलावे।।

पर्यय है आलंबनशीला, ध्रुव का आलंबन लेती।
पराधीनता है नहीं इसमें, नारी प्रकृति ही यह होती।
पर्यय द्रव्यमयी जब होती, भेद नहीं कुछ भी दिखता।
आत्मानंद प्रकट होता तब, सुखमय भविष्य खुद का लिखता।।
करे समर्पण मेरी परिणति, निज ध्रुव में ही रम जावे।
चतुर्गति के कष्ट मिटें अरु, सुखमय जीवन हो जावे।।
२/२/१५ १०.०० सुबह

३३.

मैं अरागी हूँ सदा

मैं अरागी हूँ सदा, ये वीतरागी ने कहा।
वर्तती दु:खमयी परिणति, पर सदा सुखमय अहा।।

हूँ अजन्मा मरूँ कैसे? पूर्ण निर्भय कर दिया।
है न मुझमें रोग कोई, वह तो जड़ तन की क्रिया।।

कर्म सब जड़रूप हैं, मैं तो सदा चेतनमयी।
जड़कर्म से जड़ता मिले, होते नहीं वे सुखमयी।।

तन-धन- सुजन के मिलन से, सुख हो यही अज्ञानता।
है भवभ्रमण का मूल यह, ज्ञानी यही है जानता।।

देह में रह देह विरहित, सदा निज को मानना।
करके 'समर्पण' निज को निज में, फिर न भव में आवना।।
२७/३/१५ २.४५

पुण्य क्रिया को हेय समझकर,उसे सर्वथा जो तजते हैं।
हो स्वच्छंद वे पाप करें, अरु चतुर्गति में भ्रमते है।।
पुण्यभाव अरु पुण्य क्रिया यदि हो न भूमिका योग्य।
फिर भी खुद को धरमी समझें, जिनमत के यह सदा अयोग्य।।

३४.
पुण्य-पाप का फल

स्वयं किये जो भाव शुभाशुभ, फल उनका ही मिलता है।
ज्ञानी तो ऐसा ही माने, मूरख व्यर्थ ही रोता है।।
पुण्योदय में जो भी मिलते, प्रेम से गले लगाते हैं।
पापोदय जब भी आता है, वे ही तो ठुकराते हैं।।

पुण्योदय में बिन अनुभव-पूंजी के खूब कमाते हैं।।
पापोदय में जो भी करते, लाखों वहीं गंवाते हैं।।
बिना किये ही यश मिलता है, पुण्योदय जब होता है।
पापोदय में कुछ भी करता, पर अपयश ही मिलता है।।

महा संयमी मुनिराजों पर, पापोदय में उपसर्ग हुये।
और विधर्मी-अन्यायी ने, पुण्योदय में राज्य किये।।
लौकिक सुख-संपत्ति-यश तो, मिलता है पुण्योदय से।
इष्ट वियोग-अनिष्ट संयोग भी, होता है कर्मोदय से।।

महापुण्य से नरतन पाया, अरु जिनशासन को भाई।
यश-अपयश तो आते जाते, जैन धर्म है सुखदायी।।

पुण्य-पाप से भिन्न मानकर, ज्ञानी निज अनुभवते हैं।
करें 'समर्पण' निज का निज में, मुक्ति वधू को वरते हैं।।
२६/२/१५

३५. भजन

वंदन नगन निरम्बर गुरु को।
परिग्रह रहित दिगम्बर गुरु को।।

क्षण-क्षण मांहिं लखें, निज आतम, दें उपदेश लखो शुद्धातम।
भूपर विचरें सिद्धों सम जो, ऐसे नगन निरम्बर गुरु को।।१।।

अन्तर में चैतन्यरूप हैं, अठविंशति गुण बाह्य रूप हैं।
पूर्ण अहिंसक जिनका जीवन, ऐसे नगन निरम्बर गुरु को।।२।

यश-अपयश अरु लाभ हान में, राजा रंक अरु महल मशान में।
समता रस का पान करें जो, ऐसे नगन निरम्बर गुरु को।।३।।
४/३/१५ ३.३०

××××××××××××××××××××××××××××××××××××

अनादि अनंत भव भ्रमण का किया अंत।
जन्म-मरण की श्रृंखला का हुआ दुरंत।।
अघातिया भी नाश कर हुए सिद्ध भगवन्त।
अनंत सिद्ध मध्य अनंत सुख, भोगें काल अनंत।।

३६-तीर्थयात्रा

भवसागर से पार उतारे, वह तीरथ कहलाते हैं।
निज आतम ही निश्चय तीरथ, जिसको लख तिर जाते हैं।

रत्नत्रय व्यवहार तीर्थ है, मोक्षमहल ले जाने को।
जिनवच भी हैं तीर्थ कहाते, भवसागर तिर जाने को।।

भवसागर से तिरे जहाँ पर, वह वसुधा भी पावन है।
हैं निर्वाण, सिद्ध अरु अतिशय, तीरथ जो मन भावन हैं।।

तीर्थंकर जहाँ मुक्ति पाते, निर्वाण क्षेत्र कहलाते हैं।
अन्य जीव जहाँ मुक्ति पायें, सिद्ध क्षेत्र बन जाते हैं।।

गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान महोत्सव, जिस वसुधा पर होते हैं।
वे अतिशय हैं क्षेत्र कहाते, भव्यों के मल धोते हैं।।

महाभाग्य से अवसर आता, भविजन तीरथ जाने का।
कर्म नष्ट कर सुखी हुये जो उनके दर्शन पाने का।।

पुण्याधीन नहीं निज तीरथ, पाने का तुम करो पुरुषार्थ।
निश्चय तीरथ मिलने पर ही, पूर्ण सिद्ध होते सब अर्थ।।
१/६/१५ ४.३०

-३७-ध्रुवधाम कहो या शाश्वतधाम..

ध्रुवधाम कहो या शाश्वतधाम, यह तो हैं बस मेरे नाम।
ध्रुवधाम रहो या शाश्वतधाम, तभी मिलेगा पद अभिराम।।

व्यय उत्पाद सदा ही होता, पर मैं तो रहता ध्रुवधाम।
जन्म मरण से रहित सदा मैं, अनादि अनंत हूँ शाश्वतधाम।।

इन दोनों को भिन्न जानकर राग-द्वेष ही करता हूँ।
भेदभाव में उलझ-उलझ कर, भावमरण नित करता हूँ।।

रहता था ध्रुवधाम कभी मैं, अब मैं रहूँगा शाश्वतधाम।
जड़ भवनों को ध्रुव-शाश्वत कह,भूले निज शाश्वत ध्रुवधाम।।

जड़ भवनों में अपनापन तज, करूँ निजातम में विश्राम।
ज्ञानानंदमय ध्रुवधाम तो वैसा ही है शाश्वतधाम।

ध्रुव को छोड़ा, शाश्वत पाया, यह तो है मेरा अज्ञान।
जग जन तो कुछ भी कहते हैं, पर ध्रुव-शाश्वत एक ही नाम।।

१८/६/१५

३८. मैं तो हूँ आनंदधाम....

शाश्वत-ध्रुव-चैतन्यधाम बिन, भटक रहा हूँ चारों धाम।
मैं तो हूँ आनंदधाम पर दु:ख ही पाऊँ आठों याम।।

धाम अनेक बनाये मैंने, काम न आया पर कोई।
अब ऐसा इक धाम बनाऊँ, हटा सके न फिर कोई।।

जड़ से निर्मित इन धामों को, समझा मैंने अपना काम।
भेदज्ञान की कला ना सीखी, अत: मिला न मुझे विश्राम।।

है चैतन्य धातु से निर्मित, जड़े हुये हैं जिसमें लाल।
जहाँ न हस्तक्षेप किसीका, हो कुबेर या हो भूपाल।।

जड़ धामों अरु पर्यायों में तज आपा निज में आओ।
गुण अनंतमय शाश्वत प्रभु लख लौट न फिर भव में जाओ।।
२९/६/१५

- दुखते दोहे शतक-

जमीकंद छोड़ो सभी, आप समोसा खाय।
पर को दे उपदेश पर, खुद कोरा रह जाय।।१ ।।
तिलक लगा हल्ला करें, ढ़ोल-मंजीर बजाय।
भावों को समझें नहीं, व्यर्थ ही गाल बजाय।।२ ।।
प्रतिमा, पुस्तक, द्रव्य भी, मंदिर की ही होय।
फ्री में भक्ति हो रही, चाहे कर्ममल धोय।।३ ।।
मन में सोचे और कुछ, वचनों से गुणगान।
हाथ खुजावे काय को, कैसे हो कल्याण? ।४।।
ग्यारह सौ का दान कर, ग्यारह नाम लिखाय।
धन आया जो दान में, नाम लिखाई जाय।।५ ।।

पुस्तक जिनके हाथ में, जाने कहाँ है ध्यान।
पिज्जाहारी हो रहे, कैसे होवे ज्ञान? ६ ।।
मोबाइल है जेब में, इयरफोन है कान।
मन में कन्या बस रही, कैसे होवे ज्ञान?७ ।।
शिक्षक को नौकर कहें, शाला दिखे मकान।

अनुशासन बंधन लगे, कैसे होवे ज्ञान?८।।
कमा-कमा कर पिताजी,धन भेजें मनमान।
जहाँ-तहाँ घूमत फिरें, कैसे हावे ज्ञान?९।।
हीरो जिन्हें आदर्श हैं, वीरों से अनजान।
देशभक्त मूरख लगें, कैसे होवे ज्ञान?१०।।
वेंलेंटाइन डे याद है, शिक्षक दिवस भुलाय।
गुरु पूनम पुरानी लगे, पग लागत शरमाय।।११।।
पिक्चर देखें, गाना सुनें, अरु डेटिंग पर जांय।
गप्पों में रतजगा करें, यों ही समय गमायं।।१२।।
मात-पिता बैरी भये, जिनने पढ़ाये बाल।
पढ़ लिख वे परदेश गये, इनकी खिंचती खाल।।१३।।
अंग्रेजी पढ़ने चले, गणित की पुस्तक हाथ।
मोटर साइकिल पर उड़ें, हवा से करते बात।।१४।।
जिनवाणी सुनते नहीं, वक्ता सुनने जात।
विषयों की चर्चा नहीं, वक्ता की ही बात।।१५।।

मंदिर में जाकर करें, पर निंदा की बात।
सासें-बहुयें जब मिलें, बहू-सास की बात।।१६।।
सीरियल साड़ी हों विषय, जब मिलती महिलायें।
जिनवाणी से दूर रह, व्यर्थ ही पाप कमायें।।१७।।
पिता, पुत्र को दे रहे, धन कमाऊ शिक्षाएं।
दर्शन-पूज छोड़कर, धन ही लक्ष्य बनाएं।।१८।।
परिजन-पुरजन छोड़कर, जब विदेश भग जाएं।

मात-पिता रोते रहें, कलयुग दोष बताएं।।१८।।
पूजा, भक्ति, आरती, प्रभु को रोज सुनायें।
पर प्रभु की सुनते नहीं, शान्ति कैसे पांएं?१९।।
ट्रस्टीगण चंदा करें, सब मिल करें विधान।
धर्म का केवल नाम है, लक्ष्य है आवे दान।।२०।।
मंदिर में भक्ति करें, मन भटके चहुं ओर।
मात्र वचन से प्रभु भजन, मन भोजन की ओर।।२१।।
जिन दर्शन कर धन-पद चहें, निज दर्शन से दूर।
पंच पाप को पोष कर, सुख चाहें भरपूर।।२२।।
श्रोता तो सोता रहे, वक्ता बकते जाएं।
जिनवाणी से दूर रह, जनवाणी ही सुनायें।।२३।।
अपरिग्रह का उपदेश दें, परिग्रह की है आस।
विषय-त्याग की बात कर, हैं विषयों के दास।।२४।।
अजर-अमर है आत्मा, नहिं है उसका नाम।
भाषण में यह सब कहें, पर चाहें वे नाम।।२५।।

धर्म धुरंधर, धर्म दिवाकर, धर्मरत्न है नाम।
धर्म पंथ चलते नहीं, करें धरम बदनाम।।२६।।
पैसों से जब धर्म हो, तत्त्व को समझे कौन?
चारण मंचों पर चढ़े, धरमी बैठे मौन।२७।।
मंत्र-तंत्र बतला रहे, धरम के मुखिया जीव।
छिद्रमयी यही नाव है, ले डूबे सब जीव।।२८।।
मेरा नाम सर्वोच्च हो, अतः लगावें बोली।

धरम की बोली न समझें, समझें धन की बोली।।२९।।
आयोजन जो धर्म के, आज बने व्यापार।
मान प्रतिष्ठा मिल रही, चंदा होय अपार।।३०।।
चंदा करके करत थे, पंचकल्याण, विधान।

चंदा करने हो रहे, पंचकल्याण विधान।।३१।।
निज दर्शन के निमित्त से, करें प्रदर्शन लोग।
कर विराग की वार्ता, उलझें विषय रु भोग।।३२।।
अध्यापक अध्ययन बिना, बांट रहे हैं ज्ञान।
व्यसनों का सेवन करें, फिर चाहें सन्मान।।३३।।
गुरु तो ऐसे हो गये, सिख सों सब कछु लेंहिं।
सिख भये होसियार सब, गुरु को कछु न देंहिं।।३४।।
परमारथ का नाम है, स्वारथ साधें लोग।
करें प्रदर्शन त्याग का, चाहत हैं वे भोग।।३५।।

लोभी हो भक्ति करें, यह तो भक्ति नाहीं।
लेन-देन हो जहाँ पर, वह व्यापार कहाहिं।।३६।।
पद-पैसा-परिवार का, नाश ना होने पाय।
इस भय से जो दान दे, रिश्वत ही कहलाय।।३७।।
दान-मान-सम्मान को, प्रवचन करते लोग।
मैं ही हूँ सबसे बड़ा,लगा हुआ है रोग।।३८।।
अपरिग्रही का भेष है, परिग्रह रहे हैं जोड़।
पाप क्रिया में मगन हैं, लोक लाज को छोड़।।३९।।

भोले श्रावक क्या करें, समझ परे कछु नांहिं।
श्रावक या मुनि संस्था, घिरे कषायों माहिं।।४०।।

नेता समझा धरम का, करते वे राजनीति।
पंथ, संघ व्यामोह में, भूले जिनवर नीति।।४१।।
सांधु-संत के संग से, हों दुर्जन भी साधु।
अब इनका संग जो करे, भोजन चाहें स्वादु।।४२।।
नाम-मान के कारणे, दान करत हैं लोग।
दानी यह देखें नहीं, दान का कहाँ उपयोग? ।४३।।
जिनवाणी से प्रेम नहीं, जनवाणी ही सुहाय।
षडावश्य पालें नहीं, कैसे जैन कहाय?४४।।
रात्रि भोजन जो करें, कभी न मंदिर जाहिं।
बिना छना पानी पियें, कैसे जैन कहाहिं।।४५।।

धन की दृष्टि हो गई, धन दिखता चहुं ओर।
तीरथ, मंदिर या हो घर, धन का ही है जोर।।४६।।
जोड़ो-छोड़ो धन हि को,धन बिन जीवन नाहिं।
धन से ही तो धर्म हो, धन से सब गुण आंहिं।।४७।।
धन का ही सम्मान हो, धन की पूजा होई।
पापोदय में धन गया, बात ना पूछे कोई।।४८।।
दान कुपात्रहिं को दिये, पुण्य बंधे जो कोय।
पापानुबंधी पुण्य वह, अंत में मूरख रोय।।४९।।
पापानुबंधी पुण्य से, जो धन मिलता भाई।

विषय-कषायों में लगे, दान दिया ना जाई।।५०।।

माला-मंच जहाँ मिले, और मिले सन्मान।
धर्माधर्म विवेक बिन, धन खर्चे मनमान।।५१।।
विषय-भोग को वीट सम, गिनते ज्ञानी लोग।
सुखमय अरु सुन्दर लगें, हुआ कौन सा रोग?५२।।
निज कारज कैसे सधे, निशदिन सोचें लोग।
पांव परें, या पग तरें, करें त्याग या भोग? ५३।।
धन पाने के कारणे, करते विश्वासघात।
मात-पिता, भाई-बहिन, तज पैसे की बात।।५४।।
त्यागी, भोगी हो रहे, ज्ञानी चाहें मान।
भोले श्रावक क्या करें? किसका करें सन्मान।।५५।।

करें प्रशंसा परस्पर, जिसका ओर न छोर।
अहो रूपं, अहो ध्वनि, ध्वनि गूंजे चहुँ ओर।।५६।।
जिसका थोड़ा पुण्य है, नूतन पंथ बनाय।
एक यही सही पंथ है, अन्य कुपंथ बताय।।५७।।
जिनवर के पथ न चलें, स्याद्वाद गये भूल।
अनेकान्तमय धर्म को, कहें अपने अनुकूल।।५८।।
धर्मी सों वात्सल्य नहीं, बस ईर्ष्या अरु द्वेष।
विद्वज्जन या त्यागी मिलें, करें परस्पर क्लेश।।५९।।
पूर्व पुण्य के उदय में, जो पावें धन-धान।
पाप काज में व्यय करें, धिक् धिक् धिक् मतिमान् ?६०।।।

ब्याह-जन्मदिन के समय, धन खर्चें मनमान।
होवे धर्म प्रभावना, तब नहीं देते दान।।६१।।
आवश्यकता है या नहीं, बिन सोचे दें दान।
क्योंकि इस से मिल रहा, बढ़-चढ़ कर सन्मान।।६२।।
परिजन पुरजन दुखित हों, बाहर करते दान।
पुण्य न हो इस दान से, केवल बढ़ता मान।।६३।।
मात-पिता को दुखी कर, जो चाहे कल्यान।
भूला वह कर्तव्य निज, धरम से वह अनजान।।६४।।
पंच अरु चौबीसों नमे, शत सत्तर भगवान।
पर उनकी सुनते नहीं, कैसे हो कल्यान?।६५।।

प्रभु को रोज सुनात हैं, प्रभु की सुनवें नाहिं।
प्रभु आज्ञा जाने बिना, सुख कैसे मिल पाहिं?।६६।।
पंथ जाति की बात कर, वक्ता रह बहकाय।
वस्तु स्वभाव ही धर्म है, सीधा नहीं समझाय।।६७।।
परमारथ की संस्था, परिवारिक हो जाय।
मोह नाश के नाम पर, मोह रहे फैलाय।।६८।।
मैं पर का कर्ता नहीं, सबको रहे समझाय।
कक्षा, प्रवचन मैं करूँ, यह कषाय रह जाय।।६९।।
मतभेदों को समझना, विद्वज्जन का काम।
मतभेदों में मनभेद कर, करें धर्म बदनाम।।७०।।

तत्त्वज्ञान की कमी से, होते हैं मतभेद।
जिनके हृदय कषाय है, वे रखते मनभेद।।७१।।
तत्त्वज्ञान की कमी से, होता नहीं है बंध।
पर कषाय से बंध हो, समझें नाहीं अंध।।७२।।
मनभेदों को दूर कर, करो तत्त्व अभ्यास।
मतभेद भी दूर हों, रक्खो यही प्रयास।।७३।।
जब, जो, जैसा मैं कहूँ, वही सत्य है भाई।
पर को मूरख मानना, है निज को दुःखदायी।।७४।।
अनंत धर्म हैं वस्तु में, कथन अनंत प्रकार।
कषाय मिटे, बढ़े नहीं, समझो भली प्रकार।।७५।।

यह जीवन अनमोल है, वाद-विवाद में जाय।
भैया रखो प्रयास यह, मिटे मिथ्यात्व-कषाय।।७६।।
मात्र क्रिया में धर्म ना, ना ही क्रिया का त्याग।
समझो सही अभिप्राय को, जाग सके तो जाग।।७७।।
पूजन-पाठ क्रिया तजीं, सत् की नहीं पहचान।
हो स्वच्छंद जग में, भ्रमें कैसे हो कल्यान।।७८।।
आतम चर्चा व ध्यान तज, मात्र क्रिया में मस्त।
कर्तावादी बन रहे, पुण्यभाव में पस्त।।७९।।
कोई क्रिया सब छोड़कर, बने प्रमादी जीव।
स्वच्छंदी जीवन जियें, दुःखदायी है सदीव।।८०।।

गुरु की सेवा चाकरी, किये होय कल्याण।

ऐसा पाठ पढ़ाय कर, जिनवच से अनजान।।८१।
आयु बढ़े, बेटी बढ़े, यह तो सहज स्वभाव।
वस्त्र घटे, कीमत बढ़े, यह किसका है प्रभाव? ८२।।
पढ़ लिख कर संतान जब, पिता से करें सवाल।
क्या किया है आपने? तब दिखता उन्हें काल।।८३।।
तेरापंथी तुम बनो, कोई कहे तुम बीस।
आतम हित पंथी बनो, कोई न कहता, ईश!।८४।।
निजहित को जिनमत मिला, जनहित में लग जाय।
चिन्तामणि सा धर्म पा, व्यर्थ ही चले गंवाय।।८५।।

पुण्योदय से प्राप्त तन, भोगों में रहे लगाय।
नई कमाई ना करी, चले गांठ को खाय।।८६।।
तन-मन-धन सब पायके, विषय-प्रमाद गमाहिं।
धर्मपंथ चलते नहीं, निश्चित नीचे जांहिं।।८७।।
परमारथ के नाम पर, चंदा करें अनेक।
सुख-सुविधा में खर्च कर, खोवें आत्म विवेक।।८८।।
तीरथ करने को गये, तीरथ की नहिं बात।
खान-पान-बाजार में, लगें रहें दिनरात।।८९।।
मन्दिर-तीरथ आदि सब, नाशक विषय-कषाय।
विषय-कषाय यहाँ करें, जल में लागी लाय।।९०।।

औषधि से रोगी बने, कैसा है दुर्भाग्य?
जिनवच सुन स्वच्छंदी हों, है कैसा ये अभाग्य? ९१।।

मात-पिता संतान को, दें मोबाइल कार।
धन कमाऊ शिक्षायें दें, देते नहीं संस्कार।।९२।।
संस्कारों से रहित मन, भटके चारों ओर।
फेसबुक, वाट्सएप का, चल रहा है दौर।।९३।।
संस्कार जैनत्व के, बच्चों को देते नाहिं।
खाना-पीना, रात-दिन, फिरें होटलों माहिं।।९४।।
देव-धर्म के विवेक बिन, मन भटके चहुँ ओर।
धर्म पंथ चलते नहीं, केवल धन की दौड़।।९५।।

नूतनता, उन्मुक्तता, अभिभावक सिखलायें।
धर्म नारी का शील है, कभी नहीं समझायें।।९६।।
लौकिक गुण देखें सभी, धर्म न देखे कोय।
धर्महीन हो कोई भी, अंत में वह तो रोय।।९७।।
धर्मही कन्यायें भी, देखें धन अरु मान।
सुन्दर तन को देखकर, समझें उसे महान।।९८।।
जाति-धर्म को छोड़कर, माने मन की बात।
मात-पिता को छोड़कर, भागें आधी रात।।९९।।
मात-पित पछतायें फिर, करें भूल स्वीकार।
इस जीवन में कीमती, हैं सबसे संस्कार।।१००।।

सह शिक्षा है आजकल, पढ़ते दोनों साथ।
हाथ मिलाते, गले लगाते करते खूब मजाक।।१०१।।
मात-पित शह दे रहे, खुल्लेपन का दौर।

बच्चों को फ्रीडम दिया, खुद का समय था और।।१०२।।
मित्रों को भ्राता बता, घूमे दिन अरु रात।
भ्राता जब भरता बने, रोते पितु अरु मात।।१०३।।
मात-पिता से बीनती, बच्चों को दें संस्कार।
देव-गुरु की महिमा बता, सिखा श्रावकाचार।।१०४।।
फ्रीडम-फ्रीडम मत करो, अनुशासन हो अवश्य।
अनुशासन बंधन नहीं, यह जीवन सर्वस्व।।१०५।।

वीतराग दर्शन बिना, धन-पद-यश सब व्यर्थ।
चुनकर विधर्मी हमसफर, करते क्यों हो अनर्थ?।१०६।।
जैनधर्म बिन स्वर्ग, भी यदि वैभव होय।
इन्द्र सरीखा वर मिले, मत लो धर्म को खोय।।१०७।।
धर्म सरीखा मित्र ना, धर्म ही मात अरु तात।
धर्म ही साथी जगत में, समझो भगिनी भ्रात।।१०८।।
तन-धन परिजन छोड़कर, यदि मिले जिनधर्म।
तो भी मित्रो ग्रहण कर, नाशो सब दुष्कर्म।।१०९।।
तन-धन-परिजन सब मिले पूर्व अनंतीबार।
महाभाग नरतन मिला, जैनधर्म सुखकार।।११०।।

अवसर चूके मित्र तो, फिर ना अवसर आय।
सुख के दिन नहीं आयेंगे, रोते काल गमाय।।१११।।
दुखते दोहों से यदि, पहुँची मन को चोट।
क्षमा करें प्रिय मित्रवर, मन में नहीं थी खोट।।११२।।

निंदा करना किसी की, नहीं रखा अभिप्राय।
विकृतिं छाईं समाज में, बतलाने का था उपाय।।११३।।
यदि विकृति है समाज में, सब मिल करवें दूर।
सार्थक करें प्रयास यदि, हो प्रचार भरपूर।।११४।।
हममें नहीं है विकृति, बतलाये हमें कोई।
धन्यवाद दें हम उसे, भ्रम मिटावे जोई।।११५।।
दुखते दोहे शतक अब, करता हूँ मैं बन्द।
मन में भाव अधिक थे, दोहा छोटा छंद।।

-चोखे दोहे-

जिनवर का यह पंथ है, सब जीवन के योग्य।
जाति, पंथ, सम्प्रदाय के, भेद नहीं हैं योग्य।।१।।
जाति, पंथ, सम्प्रदाय के, भेद जाओ सब भूल।
जिनवर सम निज को लखो, सुख पाओ अनुकूल।।२।।
प्रतिदिन जिनदर्शन करो, जिनवच सुनिये नित्य।
जिन सम निज को देखिये, सुख पाओगे नित्य।।३।।
जीवन में यदि गुरु नहीं, तो जीवन ही शुरु नहीं।
रत्नत्रय से सहित नहीं, समझो उनको गुरु नहीं।।४।।
पानी पीना छानकर, करना गुरु को जान।
हे चेतन यदि सुख चहो,जीव ही निज को मान।।५।।

सबका आतम एक सा, सबका एक स्वभाव।
सुख चाहें सब एक सा,मोह का करो अभाव।।६।।
इक दूजे की अच्छाई का, करो सदा सम्मान।
दोष यदि कोई दिखे, बतलाओ ससम्मान ।।७।।
बतलाने पर न सुनें, नाहिं करो तुम क्लेश।
राग बढ़ाओ न भले, पर न करो तुम द्वेष।।८।।

दुखमा पंचम काल में, घर-घर तत्व प्रचार।
प्रमुदित होते विज्ञजन, जब-जब करें विचार।।९।।
पढऋना-लिखना-समझना, यह प्रशंसनीय काम।
पर जब तक निर्णय न हो, पूर्ण ना हावे काम।।१०।।

आतमहित में जो लगे, उनसे जनहित होय।
यह तो कोई न दोष है, गेंहूँ संग,भूसा होय।।११।।
अशुभराग, शुभराग हो, दोनों ही हैं आग।
अज्ञ लोग ऐसा कहें, एक आग इक बाग।।१२।।
राग कोई हो आग है, आतम ही है बाग।
राग-आग को त्याग कर, निज से कर अनुराग।।१३।।
बहुधन अरु स्वस्थ तन, विषयन खर्चे लोग।
धन्य-धन्य वे जीव हैं, धर्म में करें उपयोग।।१४।।
तन-मन-धन अरु वचन को, परहित करें उपयोग।
धन्य-धन्य वे जीव हैं, नहीं चाहत जो भोग।।१५।।

विद्वज्जन रखलें अगर, मनमांहिं मतभेद।
नहीं दुर्लभ है एकता, करें दूर मनभेद।।१६।।
जिसका जो योगदान हो, करें उसे स्वीकार।
सब जिनेन्द्र के भक्त हैं, एक ही है परिवार।।१७।।
हैं घर में यदि चार जन, हर मत सहमत नाहिं।
पर रहते हैं साथ में लघुता, नहीं दिखलाहिं।।१८।।
सबसे सहमति हो न हो, करो नहीं अपमान।

जिन मुद्दों में साम्यता, उनका करो सन्मान।।१९।।
जब तक नहीं सर्वज्ञता, होंगे ही मतभेद।
जिनमत को ही ग्रहण करछोडऋों मन-मतभेद।।२०।।

जिन आगम अभ्यास बिन, निज परिचय नहीं होय।
निज परिचय-अनुभव बिना, मिथ्यामल नहीं खोय।।२१।।
पढ़ते -सुनते समय में,आतम होवे मुख्य।
आतम अनुभव से मिले, अविनाशी निज सौख्य।।२२।।
सुनने में हीमस्त जो, श्रोता ही रह जाय।
निज ज्ञायक अनुभव बिना, सुनना व्यर्थ कहाय।।२३।।
पढ़ लिखकर के बंधुवर, मत होओ संतुष्ट।
निज आतम अनुभव बिना, परिणति न हो पुष्ट।।२४।।
चर्चा में जो तृप्त है वह अतृप्त रह जाय।
निज आतम चर्या बिना, सुख कैसे वह पाय?२५।।

हे बंधु नित प्रात उठ, जिनंदिर को जाओ।
जिनवर दर्शन प्राप्त कर, नरभव सफल बनाओ।।२६।।
जिनवर दर्शन न करे,तो वह कैसा जैन?
जिनस्वरूप समझे बिना, कभी मिले न चैन।।२७।।
निज दर्शन की प्राप्ति हित, जिनदर्शन अनिवार्य।
ज्ञानीजन को भी अरे! जिनदर्शन स्वीकार्य।।२८।।
जिनवर दृष्टि स्वयं पर,देवें है संदेश।
हम भी देखें स्वयं को, यही मूक उपदेश।।२९।।

जिनदर्शन उनका सफल, करते जो निजदर्श।
निजदर्शन से ही मिले, ज्ञानानंद उत्कर्ष।। ३०।।

ज्ञान ध्यान में लीन हैं, नग्न दिगम्बर वेश।
संयोगों से रहित हैं, रंचमात्र नहीं क्लेश।।३१।।
प्रभु का रूप बतायकर, प्रभु सम हमें बतायें।
पूर्ण अनिच्छुक अपरिग्रही, वे ही गुरु कहलायें।।३२।।
मिथ्या तिमिर निवारकर, खोंले मेरे नेत्र।
निज आतम में रमत हैं, सदाकाल हरक्षेत्र।।३३।।
गुरु की करो उपासना, खुद भी गुरु हो जाव।
महाभाग्य अवसर मिला, मत चूको यह दाव।।३४।।
मात्र नमन तो हैं नहीं, गुरुभक्ति का रूप।
मैं भी उन जैसा बनूं, भावे गुरु स्वरूप।।३५।।

गुरु की चर्या आचरण, लगें सदा सुखरूप।
आनंदमयी जीवन सदा, समझो गुरु स्वरूप।।३६।।
आतमहित स्वाध्याय से, स्वाध्याय कर्तव्य।
आतमहित के लिए ही स्वाध्याय हो नित्य।।३७।।
अध्ययन में स्व मुख्य हो, स्वाध्याय कहलाय।
इससे ही शंका मिटें, मोह तिमिर विनशाय।।३८।।
स्वाध्याय का फल मिले, समता और समाधि।
यदि अध्ययन करते रहें, केवल मिले उपाधि।।३९।।
स्वाध्याय के निमित्त से, घटते विषय-कषाय।

मोक्षमार्ग की प्राप्ति का, यह ही एक उपाय।।४०।।

स्वाध्याय से बंधुवर, प्रगटे स्व-पर विवेक।
स्वाध्याय है परम तप, नित्य करो प्रत्येक।।४१।।
ज्यों गाड़ी में ब्रेक ना, दुर्घटना ही होय।
त्यों संयम बिन आत्मा, चतुर्गति में रोय।।४२।।
पंचेन्द्रिय मन के विषय, सीमित करना सीख।
निज वैभव को भूलकर, क्यों मांगे है भीख।।४३।।
सर्व जीव हैं सिद्ध सम, निज सम सबको मान।
क्यों हिंसा उनकी करे, समझ-समझ मतिमान।।४४।।
संयम रतन समान है, रक्खो इसे सम्हाल।
जिनके नहीं संयम रतन, वे तो हैं कंगाल।।४५।।

निज आतम में रमण ही , निश्चय संयम जान।
विषय त्याग -प्राणी दया, यह व्यवहार बखान।। ४६।।
अनादिकाल से कष्ट जो,मिले अनंतीबार।
किया चतुर्गति भ्रमण पर, मिला ना मुक्तिद्वार।।४७।।
शक्ति है सर्वज्ञ की,पर पाया अल्पज्ञान।
दीन हीन जीवन जिया, होकर वैभववान।।४८।।
जन्म-मरण, सुख-दुख में, होते कर्म निमित्त।
कर्मनाश हों सुतप से, जिसमें दिया ना चित्त।।४९।।
निज आतम अनुभव बिना, मन भटके चहुँ ओर।
जानूं, भोगूं अन्य को, इच्छाएं घनघोर।।५०।।

निज में ही जब तृप्त हो, इच्छाएं हों दूर।
कर्मों का भी नाश हो, प्रगटे सुख भरपूर।।५१।।
तप के बारह भेद हैं, धार शक्ति अनुसार।
स्व में प्रतपन, नियत है, शेष सभी व्यवहार।।५२।।
यदि तप नहीं तो पतन है, निश्चय जानो एह।
तप धारण करने मिली, दुर्लभ यह नरदेह।।५३।।
देवपूजा अरु दान तो हैं, श्रावक को मुख्य।
पुण्योदय से प्राप्त धन, दान करो तुम अवश्य।।५४।।
हो यदि ज्ञानभ्यास तो, करो ज्ञान का दान।
शुद्ध-सात्विक औषधि बता, करो औषधि का दान।।५५।।
करुणा हो हर जीव पर होता अभयदान।
मुनि-श्रावक को समय पर, कीजे आहारदान।।५६।।
परहित के ही भाव से, धन का करें उपयोग।
मानादिक की चाह बिन, भाव मात्र सहयोग।।५७।।
दान करन के भाव से, तुम मत करो कमाई।
सहज संयोग से जो मिले, दान करो तुम भाई।।५८।।
दानादिक के भाव से, तुम मत जोड़ो अर्थ।
पुण्योदय से जो मिला, दान करो उत्तमार्थ।।५९।।
श्रावक के षट् कार्य यह, नित्य करन के योग्य।
निश्चय से तो आत्मा, एक जानने योग्य।।६०।।

षट्द्रव्यात्मक लोक यह, रहे अनादि अनंत।

कोई न कर्ता जगत का, कहते श्री भगवन्त।।६१।।
निज आतम परिचय बिना, घूम रहा संसार।
निजमुख दर्शन के बिना, कभी न हो भवपार।।६२।।
निज आतम की रुचि नहीं, निज का नहीं है बोध।
निज चर्चा में रुचि नहीं, यही अनंत है क्रोध।।६३।।
परद्रव्यों का परिणमन, लगने लगे अनिष्ट।
जागृत होवे भाव यह, पर को करूँ विनष्ट।।६४।।
ऐसे क्रोध अनादि से, कर-कर के दु:ख पाय।।
क्षमाभाव धारा नहीं, जो है सुख का उपाय।।६५।।
समझो वस्तुस्वरूप को, निज का करो अवबोध।
उत्तम क्षमा को धारकर, त्यागो शत्रु क्रोध।।६६।।
छेदन-भेदन, हानि अरु, रोग-शोक-अपमान।
पापोदय से मिलत हैं, समझो है मतिमान।।६७।।
अशुभभाव पहले किये, हुआ तभी था बंध।
अब आये वे उदय में,रोते क्यों मतिमंद।।६८।।
क्रोध मिटाने के लिए,करो यदि फिर क्रोध।
मल से मल धुलता नहीं,समता से हो अवरोध।।६९।।
समता रस का पान कर,शान्त करो यह क्रोध।
क्रोधाग्नि तब शांत हो,जब हो निज का बोध।।७०।।

यशकीर्ति से यश मिले, सुभग कर्म से रूप।
अपयश-दुर्भग के उदय, अपयश और कुरूप।।७१।।
पुण्योदय होवे यदि, मिलता मान सम्मान

पापोदय आवे जभी, रोग-शोक-अपमान।।७२।।
इनके ही संयोग से, अज्ञानी को हो मान।
इनसे ही गुरु-लघु गिने, ज्ञायक का नहीं ज्ञान।।७३।।
निज ज्ञायक का ज्ञान ना, पर में दृष्टि होय।
यह ही मान कषाय है, मूरख कर-कर रोय।।७४।।
अकड़ रोग सम मान है, सीधा चलता नाहिं।
मरकर पहुँचे पशु में, जहाँ सीधा होता नाहिं।।७५।।
जाति-कुल-धन अरु रूप, तप, पूजा ऋद्धि ज्ञान।
इन सबके ही निमित्त से, मूरख करे गुमान।।७६।।
यह सब तो संयोग है, निश्चित होय वियोग।
इनको अपना मानकर, क्यों करते हो शोक।।७७।।
मान सहित जो चित्त है, बंजर भू सम होय।
जिनवच बीज बपन करे, नहीं अंकुरण होय।।७८।।
मान रहित हो हृदय यदि, निश्चित कोमल होय।
बोये बीज तत्त्वज्ञान का, त्वरित फूल-फल होय।।७९।।
संयोगों से भिन्न सब, हैं ज्ञायक भगवान।
निज-पर को ऐसा लखो, नहीं होयेगा मान।।८०।।

१. निज आत्मा को छोड़कर, सुख कहीं नहीं जमाने में।

बचके रहना मेरे यारो, बहुत से लोग लगे हैं बरगलाने में।।

अपने सोचे कुछ न होता, होना हो सो होय।
ज्ञानी रहता चैन से, मूरख व्यर्थ ही रोय।।

१.

२.

अपने किये न होय कुछ, काहे बोझा ढोय।
कर्तापन को फेंक कर, चैन की निंदिया सोय।।

३.

७. अष्टाह्निका पर्व में, अष्ट द्रव्य से पूजा रचाओ।
अष्ट कर्म का नाशकर, अष्टम वसुधा को पाओ।।

वीतरागता प्राप्ति हित, वीतराग को करुँ **नमन**।
दर्शन होय अरागी का, औश्र भावना कुछ **न मन**।।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु की करता हूँ मैं **वंदना**।
वीतराग होऊँ नहीं, वंदन करूँ न **बंद ना**।।
निज आतम को जानना, एक यही हो **कामना**।
निज आतम अनुभव हुआ, फिर तो कोई **काम ना**।।

दोष विनाशक आनंद दायक है यह बारह **भावना**।
वैराग्य प्राप्ति अरु वृद्धि हेतु, सभी निरन्तर **भाव ना**।।

कहते हैं कानजी स्वामी....

मैं तो हूँ बस सिद्धस्वरूपी..कहते हैं कानजी स्वामी
रंग-राग से रहित अरूपी...कहते हैं कानजी स्वामी
पर्यायें क्रमबद्ध सदा ही...कहते हैं कानजी स्वामी
कोई किसी का कर्ता न धर्ता..कहते हैं कानजी स्वामी
दो नय हैं निश्चय-व्यवहार..कहते हैं कानजी स्वामी
नय व्यवहार को हेय कहा है...कहते हैं कानजी स्वामी
निश्चय नय का विषय ग्राह्य है...कहते हैं कानजी स्वामी
भाव शुभाशुभ बंधरूप हें...कहते हैं कानजी स्वामी
आतम तो चैतन्यरूप है...कहते हैं कानजी स्वामी
स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी..कहते हैं कानजी स्वामी
ज्ञान ना जावे, ज्ञेय ना आवे..कहते हैं कानजी स्वामी
क्षायिक भाव भी परद्रव्य है...कहते हैं कानजी स्वामी
परम पारिणामिक स्वभाव है...कहते हैं कानजी स्वामी
गुण अनंत पर भेद नहीं है...कहते हैं कानजी स्वामी
पर्यायों से दृष्टि हटाओ...कहते हैं कानजी स्वामी
मुक्ति की भी चाह नहीं है...कहते हैं कानजी स्वामी
मैं तो अछूता जड़कर्मों से..कहते हैं कानजी स्वामी

कार्य होय दो कारण होते....कहते हैं कानजी स्वामी
उपादान अरु निमित्त कारण..कहते हैं कानजी स्वामी
उपादान निज शक्ति हमारी...कहते हैं कानजी स्वामी
हो निमित्त पर रहे अकिंचित्..कहते हैं कानजी स्वामी
एक क्षेत्र में रह, सब न्यारे...कहते हैं कानजी स्वामी
स्वचतुष्टय में लगते प्यारे...कहते हैं कानजी स्वामी
पर को तज अरु स्व को भज तू...कहते हैं कानजी स्वामी
भूलेला भगवान बधा छे...कहते हैं कानजी स्वामी
मैं परमातम तू निर्णय कर..कहते हैं कानजी स्वामी
मैं परमातम तू अनुभव कर..कहते हैं कानजी स्वामी
है अनंत उपकार जिनका .. वे कहलाते कानजीस्वामी
धन्य-धन्य गुरुदेव हमारे...धन्य-धन्य कानजीस्वामी।।
१६.४.१५